U.G.C. Serial No. 01, Journal No. 42486 ISSN - 0974-1526

SAṀSKṚTI SANDHĀNA

VOLUME - XXXIII NO. 1 (January - June) 2020

A PEER REVIEWED INTERNATIONAL REFERRED JOURNAL

EDITOR

DR. JHINKOO YADAV

ASSOCIATE EDITORS

DR. VINOD KUMAR YADAV

DR. ABHAY KUMAR

JOURNAL OF THE

MANAV SANSKRITI SHODH SANSTHAN

53, Mahamanapuri Colony, I.T.I. Road, Karaundi, P.O. B.H.U.
Varanasi-221005 (INDIA)
Ph.No. 0542-2570220, Mob. 9451527173
e-mail: manavsanskritiss1987@gmail.com; jhinku.yadav@gmail.com
website: www.msssvaranasi.com

विषयानुक्रमणिका
Content

		पृष्ठ सं०
Editorial		*i-ii*
१. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में बौद्ध धर्म : एक अध्ययन	प्रमोद कुमार गुप्ता, आर.पी. पाण्डेय	१-५
२. वेदान्त की मुक्ति प्रक्रिया में बिम्ब-विधान	आर० एन० यादव	६-९
३. प्राचीन साकेत महानगर	शरदेन्दु कुमार त्रिपाठी	१०-१६
४. आचार्य पतञ्जलि के मत में 'अर्थ' की अवधारणा	संदीप कुमार यादव	१७-२९
५. आर्युर्वेद में वर्णित वाद्यविद्या का स्वरूप (चरकसंहिता के विशेष आलोक में)	खूशबु कुमारी	३०-४१
६. जातक वाङ्मय में वर्णित दासों का सामजिक जीवन	देवांशु रंजन चतुर्वेदी	४२-४६
७. साहित्यिक साक्ष्यों में वरुणा नदी माहात्म्य	सुरेन्द्र कुमार यादव	४७-५६
८. कंकाली के पुरातत्व में अंकित विदेशी जैन श्राविकाएँ	संगीता सिंह	५७-६२
९. बौद्ध भिक्षुणी संघ में स्त्रियों की प्रवेश सम्बन्धी अर्हता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	जाह्नवी शेखर राय	६३-६९
१०. कथासरित्सागर में राजधर्म	संजय कुमार	७०-८८
११. श्रीकृष्ण के सन्दर्भ में कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग	निर्मल कुमार सिंह	८९-९७
१२. शैव धर्म का विकास तथा इसके प्रमुख सम्प्रदाय	अलका पाण्डेय	९८-११४
१३. नालन्दा के पतन का ऐतिहासिक विश्लेषण	विनोद कुमार यादव	११५-१२१
१४. कलचुरि अभिलेखों में प्रतिबिम्वित शैव धर्म	मीना लाल, कुँवर धनंजय विक्रम सिंह	१२२-१३३

कथासरित्सागर में राजधर्म

संजय कुमार*

Abstract:

Somdeva's Kathasaritsagar holds a prestigious importance in the fiction. It is famous as the summary of the Vrihatkatha. The Kathasaritsagara is divided into 124 Trangas with 18 Lambakas having 21388 Shlokas. This book presents deep deliberation upon contemporary socio-cultural and political structure. At the same time, it also underlines the role of polity in building a healthy society. There are three important elements of any nation - sovereignty, definite territory and population. Modern polity is studied keeping these three elements specifically. The Kings, Ministers, States, Treasuries, Punishments, Concerns, etc., as enunciated and underlined in the Kathasaritsagar represents these elements. Therefore, the importance of the polity propounded in Kathasritaṣagar is as much today as it was at that time. During that time, name like Rajdharma, Rajshastra, Dand Niti etc. were prevalent in the state also.

कथासरित्सागर अनेक कथाओं के अमृत की खान वृहत्कथा नामक ग्रन्थ के साररुप में प्रसिद्ध है। यह वृहत्कथा कविवर गुणाढ्य कृत पैशाची भाषा की श्रेष्ठ कथाग्रन्थ है, जिसकी रचना सातवाहन राजाओं के समय प्रथम या द्वितीय शताब्दी के लगभग मानी जाती है। आन्ध्र सातवाहन युग में स्थल एवं जलमार्ग से अनेक सार्थवाह, पोताधिपति एवं सायात्रिंक व्यापारी रात-दिन चेतनमय बनकर भ्रमण करते रहते थे। विशेषकर रात्रि जागरण उनके लिए अति आवश्यक था, क्योंकि उनके पास व्यापार की सामग्री और व्यापार की वस्तुओं के क्रय-विक्रय के निमित्त धन का एक कोश भी संचित रहता था।

*सहायक-आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

इसलिए उनका जागरण वस्तुओं इत्यादि की सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। इस जागरण में केवल कथा ही उनके लिए संजीविनी थी, जिसके बल वे जागरण करते थे। उनके लिए चाँदनी रात्रि की मनोहार्यता कथाओं के आल-बाल से और मनोहर हो जाती थी। लम्बी रातों में मनोरंजनात्मक कथाओं में अनेक कथानकों का प्रचलन उनके जीवन जागरण का महत्त्वपूर्ण पक्ष था, जिनमें उनके देशान्तर भ्रमण और देश-दर्शन का महत्त्व भी समाहित रहता था। उन्हीं छोटी-छोटी कथाओं से उत्पन्न अनेक राजधर्म के तत्त्व भी हमारे सामने आते हैं, जिनके परिपालन से एक श्रेष्ठ राष्ट्र का नवनिर्माण सम्भव है।

किसी भी राष्ट्र के लिए तीन पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं- प्रभुसत्ता, निश्चित भू-भाग और जन अर्थात् जनसंख्या। प्रभुसत्ता से तात्पर्य सम्पूर्ण व्यवस्थाओं एवं कर्त्तव्यों का नियन्त्रक तथा अनुशासक, एक निश्चित सीमा (भू-भाग) जिसके प्रति अनुशासक सबका उत्तरदायी होता है और जिनका अनुशासक कुशल-क्षेम का ध्यान रखता है यानि जनसंख्या। इन्हीं तीनों पक्षों में आज का राजनीतिक परिदृश्य भी सामने आता है। यही मूल स्वरुप में है, शेष तो इसी का विविध रूप है। एक महत्त्वपूर्ण पक्ष इस राजधर्म या राजनीतिक परिदृश्यों के सन्दर्भ में उपस्थित होता है कि प्राचीन समय में जो इनसे सम्बन्धित व्यवस्थाएं थी, उनका आज क्या महत्त्व है ? पहले राजतन्त्र था वह भी वंशानुगत ही था लेकिन आज अधिकांश देश प्रजातन्त्रात्मक इकाई के रूप में दिखलाई पड़ रहे हैं, तो प्राचीन राजधर्म का आज के सन्दर्भ में क्या उपयोग है ?

इस महत्त्वपूर्ण पक्ष का समाधान यह है कि चाहे राजतन्त्र हो या प्रजातन्त्र सबके मूल में प्रजापालन, सीमा रक्षा और राष्ट्र समृद्धि ही रही है। वंशानुगत सत्ता का सबसे बड़ा दोष निरंकुशता सामने आती है और उनके पतन से भी सभी परिचित ही हैं। उसी का परिणाम प्रजातन्त्र बना, जिसमें जनता का शासन जनता के द्वारा माना जाता है, लेकिन वह भी आज दोषपूर्ण स्थिति की ओर आगे बढ़ रहा है। दोषपूर्ण इस अर्थ में कि सही मायने में क्षेत्र प्रतिनिधि जिसे चुना जाना चाहिए उसका आज चुनाव नहीं हो पा रहा है। प्रजातन्त्र की स्थापना जिस मूल भावना उद्देश्य की गयी थी, उसकी पूर्ति उस रूप में नहीं हो पा रही है जिस रूप में अपेक्षित है।

सत्ता सदैव उन्हीं को अंगीकार करती है, जो सदैव राजमर्यादाओं को केवल ओढ़े नहीं बल्कि प्राण-पण से उसका पालन करते रहे हैं। अनेक कथा-कथानक उनके उचित और अनुचित कार्यों की गवाही देते हैं तथा परिणाम की चेतावनी भी देते हैं। राजसत्ता भोग के लिए नहीं वह तो त्याग की परम सीमा है। जहाँ स्वहित समाप्त हो जाता है और परहित प्रारम्भ होता है। जब-जब राजसत्ता में स्वहित की कामना और परहित में विकर्षण आया है तब-तब यह राजसत्ता अपना मार्ग बदलती रही है। अभी प्रजातन्त्र का युग है, सम्भव है इसमें भी दोष की बहुलता हो जाय और लोग नये तरह के लोकतन्त्र की ओर आगे बढ़े। इन तमाम परिदृश्यों में प्राचीन साहित्य अपने युग के अनुशासनों का एक आदर्श प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर एक स्वस्थ परम्परा का जन्म होता है। यही स्वस्थ परम्पराएँ हमारे युग की आधारशिला बनती हैं और यही साहित्य का भविष्य भी माना जाता है।

'कथासरित्सागर' अपने राजधर्म की मर्यादा के अनेक वातायन को खोलने का प्रयास करता है और एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जहाँ राजा, मन्त्री और प्रजा में आपसी सम्बन्धों का आकर्षण दृष्टिगोचर होता है। इसलिए यहाँ कहा गया है- 'विचारश्चिन्ता च सारं राज्येऽधिकं तु किम्?'[1] अर्थात विचार और चिन्तन के अतिरिक्त राजनीति का सार और क्या हो सकता है? विचार और चिन्तन ही राजनीति का सार यहाँ यह बताया गया है। यह विचार और चिन्तन प्रजा के सुख-सुविधा और राष्ट्र की सीमाओं की ओर हमें उन्मुख करता है। यह राज-मर्यादाओं के पालन की प्रवृत्ति का स्वरूप है। यह कैसे सम्भव है, तो इसके लिए 'कथासरित्सागर' में राजा के जितेन्द्रिय होने का निर्देश किया गया है। चूंकि राजा ही राजव्यवस्था का नियामक होता है। उसी के अधीन मन्त्री, सेना, कोश, दण्ड इत्यादि होते है। इसलिए सर्वप्रथम राजा के ही विषय में वर्णन किया जा रहा है। राजा का वास्तविक परिवार तो उसकी प्रजा है। एक दिन जिज्ञासु नरवाहनदत्त ने जानते हुए भी अपने मन्त्रियों से राजनीति का सार पूछा तो मन्त्रियों ने कहा-

आरुह्य नृपतिः पूर्वमिन्द्रियाश्वान् वशीकृतान्।

कामक्रोधादिकान् जित्वा रिपूनाभ्यन्तरांश्च तान्।।

जयेदात्मानमेवादौ विजयायान्य विद्विषाम्।

अजितात्मा हि विवशो वशीकुर्यात्कथं परम्।।[2]

अर्थात् युवराज राजा को चाहिए कि सबसे पहले इन्द्रिय रूपी घोड़ों पर चढ़कर काम, क्रोध, लोभ आदि भीतरी शत्रुओं को जीतकर, अन्य बाहरी शत्रुओं को जीतने के पहले सब प्रकार से अपनी आत्मा पर ही विजय प्राप्त करे। जो स्वयं पर विजय नहीं कर पाया, वह स्वयं विवश या पराधीन रहकर दूसरों पर क्या विजय प्राप्त कर सकेगा? यहाँ युवराज (राजा) की बात की गयी है। राजा का पुत्र या अन्य जो राजा के बाद राज्य का उत्तराधिकारी होता था उसे ही युवराज बनाया जाता है, जिसकी आयु कम होती है। इसलिए उसे जितेन्द्रिय होना चाहिए। 'कथासरित्सागर'[3] में नरवाहनदत्त के राज्याभिषेक का कथानक दिया गया है। यह राज्याभिषेक माता-पिता की उपस्थिति में वेद मन्त्रों से पवित्र किये गये तीर्थों के जल से तथा अत्यन्त हर्ष पूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। युवराज के लिए पुरोहित, मन्त्री आदि की अलग से नियुक्ति की जाती थी। अब प्रश्न उठता है, कि राजा के रहते हुए युवराज की क्या आवश्यकता पड़ती है? तो इसका कारण स्पष्ट है राजा अपनी शक्ति के विस्तार रूप में ही युवराज की नियुक्ति करता है। पुत्र के अभाव में राज्य का उत्तराधिकारी कन्या होती है। कथासरित्सागर में आया है कि भिल्लराज की पुत्री सुन्दरी थी जो पिता की मृत्यु के बाद भिल्लपाली राज्य पर शासन करती थी।[4] 'अर्थशास्त्र' के राजर्षिवृत्तम् में भी सर्वप्रथम राजा को जितेन्द्रिय होने के लिए कहा गया है- **तस्मादरिषड्**

वर्गत्यागेनेन्द्रिय जयं कुर्वीत।[5] अर्थात् इसलिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य छहों शत्रुओं का सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। वंशक्रम राज्य व्यवस्था में राजा के बड़े पुत्र को राजा बनाया जाता था। यदि बड़ा पुत्र इनकार कर दे तो उससे छोटे पुत्र को राजा बनाया जाता था। उज्जयिनी नरेश चण्डमहासेन के दिवंगत हो जाने पर उनका बड़ा पुत्र गोपालक राजा बनने से यह कह कर इनकार कर देता है कि मैं वत्सराज उदयन और बहन वासदत्ता को छोड़कर उस उज्जयिनी पुरी को नहीं जा सकता तथा पिता से रहित उस उज्जयिनी पुरी को नही देख सकता हूँ। अतः मेरी अनुमति से मेरा छोटा भाई पालक ही राज्य करे। उसके इस निर्णय पर उदयन कहते हैं–

एवं वदन्यदा नैच्छद्राज्यं गोपालकस्तदा।

सेनापतिं रुमण्वन्तं विसृज्योज्जियिनीं पुरीम्।।

वत्सेश्वर कनिष्ठं तं श्वशुर्य पालकाभिधम्।

दत्ताभ्यनुज्ञं ज्येष्ठेन तस्यां राज्येऽयषेचयत्।।[6]

अर्थात् इस प्रकार कहते हुए गोपालक ने जब राज्य करना नहीं चाहा तब वत्सराज उदयन ने सेनापति रुमण्वान को उज्जयिनी पुरी भेजकर अपने छोटे साले पाण्लाक का उज्जयिनी में राज्याभिषिक्त कराया, क्योंकि बड़े भाई गोपालक ने इसके लिए अनुमति दे दी थी। राजा का मुख्य कार्य प्रजा का पालन है। राजा का वास्तविक परिवार उसकी प्रजा मानी जाती है। प्रजा का धर्म साधन संयमित करना ही राजा का श्रेष्ठ कार्य है– **राज्ञो धर्म निजं प्राहुः प्रजानां धर्मरक्षणम्।**[7] अर्थात् राजा का धर्म तो यही है कि वह प्रजा के धर्म की रक्षा करें। यहाँ राजा के धर्म का अभिप्राय है कर्त्तव्य। 'कथासरित्सागर' में महर्षि कण्व राजा चन्द्रलोक को उसके कर्त्तव्य के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए कहते हैं–

तत्प्रजा रक्ष धर्मेण समुन्मूलय कण्टकान्।

हस्त्यश्वास्त्रादियोग्याभिश्चललक्ष्यादि साधय।।

भुङक्ष्व राज्यसुखं देहि धनं दिक्षु यशः किरः।

कृतान्तक्रीडितं हिंस्रं मृगयाव्यसनं व्यज।।

हन्तुर्वध्यस्य चान्यस्य यत्र तुल्या प्रमादिता।[8]

किं तेन वह्वनर्थेन पाण्डोर्वृत्तं न किं श्रुतम्।।

अर्थात् अतः तुम धर्म से प्रजा की रक्षा करो, शत्रुओं का नाश करो और युद्धोपयोगी हाथी–घोड़ों आदि के अभ्यास से चंचला लक्ष्मी का साधन करो, राज्य सुख भोगो, धन का

दान करो और दिशाओं में अपना यश फैलाओ। काल की क्रीड़ा के समान हिंसक मृगया व्यसन को तुम छोड़ दो, क्योंकि अनेक अनर्थोवाली उस मृगया से क्या लाभ? जो मारने वाले, मरने वाले और दूसरों के लिए भी प्रमाद का कारण है। क्या तुमने राजा पाण्डु का वृत्तान्त नहीं सुना है? राजा पाण्डु जंगल में मृगया के समय ही किण्डम ऋषि के शाप का भाजन बन गये थे। यहां पर कण्व ऋषि के द्वारा मृगया के परित्याग की बात कही गयी है। मृगया एक व्यसन है। शास्त्रों में व्यसन दो प्रकार के बतलाए गये हैं[९]– कामजन्य व्यसन दश और क्रोधजन्य व्यसन आठ। ये दोनों प्रकार के व्यसन राजा के अनुकूल नहीं होते हैं। कामज व्यसन इस प्रकार है– मृगया, जुआ, दिन में सोना, पराये की निन्दा, स्त्री में आसक्ति, मद, नाच–गान वाद्य में अत्यासक्ति और व्यर्थ भ्रमण तथा क्रोधजन्य व्यसन हैं– चुगलखोरी, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदोष (धनदोष), कठोरवचन और कठोर दण्ड। इनसे राजाओं को बचना चाहिए।

राजा का प्रमुख कार्य प्रजापालन है। प्रजापालन बहुत व्यापक शब्द है। इस शब्द से राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्थाओं का बोध हो जाता है। प्रजा सब प्रकार के विघ्न–बाधाओं से रहित होकर कुशलतापूर्वक जीवनयापन करे, यही प्रजापालन का मूल अर्थ है। यहाँ पर सागरवर्मा अपने पुत्र समुद्रवर्मा को प्रजापालन का उपदेश देते हुए कहते हैं–

नूतनं पुत्र राज्यं ते तत्तावत्त्वं प्रसाधय।

नास्त्यपुण्यमकीर्तिर्वा प्रजा धर्मेण शासतः।

अनवेक्ष्य च शाक्ति स्वां युक्तो राज्ञां न विग्रह।।[१०]

अर्थात् बेटा तुम्हारा राज्य अभिनय है अतः तुम पहले इसे ही ठीक करो। धर्म से प्रजाओं का पालन करने से राजा पापी या निन्दनीय नहीं होता है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के बिना देखे–समझे समस्त राजाओं से विरोध लेना उचित नहीं है। उत्तररामचरितम् में भी महर्षि वशिष्ठ का संदेश देते हुए अष्टावक्र राम से कहते हैं कि जामाता ऋष्यशृंग के यज्ञ के कारण हम रुके हुए हैं। तुम भी अभी बालक हो और नया राज्य है। इसलिए तुम प्रजा को प्रसन्न करने में तत्पर होना। उससे ही यश होगा, जो कि तुम लोगों के लिए परम धन है।[११] यश राजधर्म का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यहाँ पर एक और महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि राजा को सदैव अपनी शक्ति और सामर्थ्य का बोध होना चाहिए तथा अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के आधार पर ही शत्रु राजाओं को पराजित करने का निर्णय लेना चाहिए। राजा या प्रजापालक द्वारा अपनी क्षमता के अनुसार लिया गया निर्णय ही लोकोपकारी सिद्ध होता है। अविचारपूर्वक या तात्कालिक निर्णय से सदैव प्रजा को कष्ट ही मिलता है। इसलिए प्रजापालक को सदैव विचारपूर्वक ही निर्णय लेना चाहिए। बोधिसत्त्व राजा का भी वर्णन 'कथासरित्सागर' में आया है, जो अनेक महनीय गुणों से मण्डित था–

स राज्यं प्राप्य करुणामुदिताक्षान्तिभिः सह।

अरंस्त न तु पापाभिः स्त्रीभिश्चपलवृत्तिभिः।।[१२]

अर्थात् बोधिसत्त्व के अंश से उत्पन्न वह वैश्यपुत्र राज्य पाकर मैत्री, करुणा, मुदिता, क्षमा आदि गुणों के साथ राजशासन करने लगा। चंचल वृतिवाली पापिनी स्त्रियों से उसने स्वयं को दूर ही रखा। कवि सोमदेव के द्वारा यहाँ बड़ी बात कही गयी है। राजा राज्य पाते ही अहंकार पालने लगता है। ऐसे लोगों के अन्दर यह अहं भाव इतना बढ़ जाता है कि उनके सभी मानवीय गुण समाप्त हो जाते हैं, जो ठीक नहीं है, मानवीय गुणों युक्त होकर ही प्रजा पालन करना श्रेष्ठ माना गया है। जिसके सम्बन्ध में 'अर्थशास्त्र' में भी कहा गया है–

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।

तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्।

अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः।।[१३]

अर्थात् प्रजा के सुख में राजा का सुख है और प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आपको अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राज्य का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में है। इसलिए राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवहार सम्बन्धी तथा राज्य सम्बन्धी कार्यों को उचित प्रकार से पूरा करे। उद्योग ही अर्थ का मूल है और इसके विपरीत उद्योगहीनता तो अनर्थों को जन्म देने वाली होती है। राजा के उद्योग के सम्बन्ध में मन्त्री योगन्धरायण 'कथासरित्सागर' में कहता है–

नान्यथोद्योगसिद्धिः स्यादनुद्योगे च निश्चितम्।

राजनि व्यसनिन्येतन्नश्येदपि यथास्थितम्।।[१४]

अर्थात् बिना उद्योग के सिद्धि नहीं प्राप्त होगी। यदि उद्योग न किया जायेगा तो उस व्यसनी राजा का जो शेष राज्य है वह भी शेष नहीं बचेगा। शासन तन्त्र के धुरी के रूप में मन्त्रिपरिषद की स्थापना हमारे धर्मशास्त्रों में बताई गयी है। वैसे तो इसकी उत्पत्ति वैदिक युग में राष्ट्रिय सभा के रूप में हो गयी थी, लेकिन उत्तरोत्तर यह सभा मन्त्रिपरिषद् का स्वरूप ग्रहण कर ली। 'अर्थशास्त्र', 'मनुस्मृति' तथा 'याज्ञवल्क्यस्मृति' आदि में सभा के लिए मन्त्रिपरिषद् शब्द का ही प्रयोग किया गया है। राजा अपने कार्यों के सम्पादनार्थ मन्त्रिपरिषद् का गठन करता है। 'कथासरित्सागर' में भी मन्त्रिपरिषद का स्वरूप यही है कि वह राजकार्य में सहायता करता है। वररुची, योगन्धरायण और रुमण्वाक आदि श्रेष्ठ

मन्त्री हैं। उनका कार्य व्यवहार सदैव राजा एवं राज्य के अभ्युदय के रूप में दिखाई देता है। यहाँ कहा गया है-

ततो जानपदत्वादिगुणयुक्तांश्च मन्त्रिणः।

पुरोहितं चाथर्वज्ञं कुर्याद्दक्षं तपोन्वितम्।।[१५]

अर्थात् आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके जनपद, देश आदि की उन्नति करने वाले मन्त्रियों तथा अथर्ववेद को जानने वाले चतुर एवं तपस्वी पुरोहित की नियुक्ति करे। मन्त्री के महत्त्व एवं उनके कर्त्तव्य के सम्बन्ध में भी यहाँ कहा गया है-

लब्धापि मन्त्रिताख्यातिरस्माकं चान्यथा भवेत्।

स्वामिसम्भावनायाश्च भवेम व्यभिचारिणः।।

स्वायत्तसिद्धे राज्ञो हि प्रज्ञोपकरणं मता।

सचिवः को भवेत्तेषां कृते वाऽप्यथवाकृते।।

सचिवायत्तसिद्धेस्तु तत्प्रज्ञैवार्थसाधनम्।

त एव चेन्निरुत्साहाः श्रियो दत्तौ जलाञ्जलिः।।[१६]

अर्थात् जिन राजाओं की सफलता मन्त्रियों के अधीन होती है, उनके लिए मन्त्रियों की बुद्धि ही कार्य साधन बनती है। इसलिए राजा का उपकार न करने के कारण हम (मन्त्री) दोषी होंगे। स्वायत्तसिद्धि राजाओं के कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य के लिए उनकी निजी बुद्धि ही साधन होती है। उनके लिए कुछ करने या न करने में मन्त्रियों का उत्तरदायित्व नहीं होता है। सचिवायत्त सिद्धिवाले राजा यदि निरुत्साह और निरुद्योग रहेंगे तो राजलक्ष्मी को तिलांजलि देनी होगी। इन विषयों के अतिरिक्त मन्त्री का प्रमुख कार्य राजा को सद्परामर्श देना भी होता है। मन्त्री के विषय में राजा यशःकेतु कहता है-

अस्मिन्नष्टे पितास्यैष मम मन्त्री विनङ्क्ष्यति।

एतन्नाशे राज्यनाशस्तदिह ब्रूत का गति।।[१७]

अर्थात् इस कन्या के मरने पर मेरा मन्त्री भी जीवित न रहेगा, जो इसका पिता है और मन्त्रि के मरने पर मेरा राज्य भी नष्ट हो जायेगा। पुनः आगे मन्त्री के परामर्श के सम्बन्ध में प्रजाजन के द्वारा कहा जाता है-

मूलं तस्य विदुर्मन्त्रं स च मन्त्रिष्ववस्थितः।

मन्त्रिनाशे मूलनाशाद्रक्ष्या धर्मक्षतिर्ध्रुवम्।।

पापं च स्याद्द्विजस्यास्य ससूनोर्मन्त्रिणो वधात्।

तस्माद्रक्ष्योऽयमासन्नोऽवश्यं ते धर्मविप्लवः।।[18]

अर्थात् धर्म रक्षण का मूल है परामर्श और वह परामर्श मन्त्रियों से ही मिलता है। इस प्रकार मन्त्री की मृत्यु से मूल का नाश हो जाता है। अतः धर्म की हानि नहीं होने देनी चाहिए और आसन्न धर्म हानि को रोकना चाहिए। 'कथासरित्सागर' में कुछ स्थलों पर मन्त्रियों की संख्या पाँच[19] दी गयी है तथा कुछ स्थलों पर दश।[20] 'अर्थशास्त्र' में आचार्य वृहस्पति के मत में सोलह और शुक्राचार्य के मत में मन्त्रियों की संख्या बीस बतलाई गयी है, लेकिन कौटिल्य का कहना है कि कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।[21] आज भी सामर्थ्य के अनुसार ही मन्त्रियों की संख्या प्रचलित है।

राजधर्म के सप्तांगों में पुर और राष्ट्र का भी विशेष महत्त्व है। ये पुर (दुर्ग) और राष्ट्र जनसंख्या और निश्चित भू-भाग ही हैं आज के राजतन्त्र का, क्योंकि कपिलदेव द्विवेदी भी राज्य के तत्त्वों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के साथ राष्ट्र को स्वीकार करते हैं।[22] पुर उसे कहा जाता था जहां राजा व सामन्तगण निवास करते थे जो बहुत ही सुरक्षित होता था। आज दुर्ग का रूप ही राजधानी है। राष्ट्र एक निश्चित भू-भाग का प्रतिनिधित्त्व करता है, जिसमें जनसंख्या निवास करती है। आज भी राष्ट्र का स्वरूप वर्तमान है। प्रायः युद्ध के समय दुर्ग की ही रक्षा की जाती है। सत्ता की मूल भूमि दुर्ग ही होता है। 'कथासरित्सागर' में अनेक राज्यों का उल्लेख उनके वैभव तथा सम्पदाओं के साथ किया गया है, यथा- कुछ इस प्रकार हैं- पाटलीपुत्र[23], कौशाम्बीनगर[24], तक्षशील[25], उज्जयिना[26], वाराणसी[27], आदि नगरों के साथ-साथ वत्सदेश[28], कच्छपदेश[29], मूरलादेश[30], लाटदेश[31], कामरुप प्रदेश[32], मद्रदेश[33], चीन[34], श्रीकण्ठदेश[35], पांचालदेश[36], गुजरात प्रदेश[37] आदि। यहाँ नगरों का जो नामोल्लेख किया गया है, वह दुर्ग रूप में ही किया गया है।

कोष का राजधर्म के रूप में विशेष महत्त्व है। बिना एक संचित कोष के राजा राज्य में सुव्यवस्था का जन्म नहीं दे सकता है, जिसे 'कथासरित्सागर' में राजलक्ष्मी कहा गया है। उसकी चंचलता के स्वभाव को इस रूप में व्यक्त किया गया है-

हरिणीव च राजश्रीरेवं विप्लविनी सदा।

धैर्यपाशेन वन्द्धं च तामेके जानते बुधाः।।[38]

अर्थात् राजलक्ष्मी हरिणी के समान सदा उछलती-कूदती और छलांगे मारती रहती है। उसे धैर्य-रूपी पाश में बाधना कुछ ही बुद्धिमान जानते है सभी नहीं। यहाँ बुद्धिमान के रूप में राजा को ही व्यक्त किया गया है। यानि कुछ ही राजा राजलक्ष्मी को स्थिर कर पाते हैं सभी नहीं। किसी भी राष्ट्र की समुन्नति कोष का प्रमुख स्थान इसलिए माना जाता है, क्योंकि कोष के द्वारा सभी असाध्य कार्य सिद्ध हो सकते हैं। इस कोष

अर्थात् अर्थ विभाग का प्रमुख समाहर्ता कहलाता है, जो सम्पूर्ण आय-व्यय का प्रमाण रखता है और भी अन्य हैं- सन्निधाता- भण्डारों का अधिकारी, स्थानिक- जनपद के चतुर्थांश का अधिकारी, गोप- गाँवों का अधिकारी, प्रदेष्टा- स्थानिक तथा गोप की सहायता प्रदान करने वाला, अक्षपटलाध्यक्ष आदि अनेक कोष के अधिकारी जो कोष के सभी विषयों पर ध्यान रखते है।

दण्ड का भी राजधर्म में विशेष महत्त्व है। समाज के सभी वर्ग व सभी लोग अपने-अपने कर्त्तव्यपालन में एकनिष्ठ रहे, सभी सबके अधिकारों और सुरक्षा का ध्यान रखे यही दण्ड आदेश देता है। यही दण्ड न्याय व्यवस्था का आधारशिला है। इसलिए 'कथासरित्सागर' में सत्य की प्रशंसा और असत्य के लिए दण्ड बताया गया है- **सत्ये तुष्येदसत्ये तु यथार्हं दण्डमाचरेत्।**[३९] अर्थात् सत्य बात पर प्रसन्न होना और असत्य बात पर दण्ड देना चाहिए। राजा को सदैव न्यायप्रिय होना चाहिए। न्याय के सम्बन्ध में यहाँ कहा गया है- **धर्मो ह्यसम्यङ् निर्णीतो निहन्त्युभयलोकयोः।**[४०] अर्थात् भली-भांति न दिया गया न्याय दोनों लोकों का नाश कर देता है। अतः दण्ड के सम्बन्ध में महाभारत में ठीक ही कहा गया है-

माता पिता च भ्राता च भार्या चैव पुरोहितः।

नादण्ड्यो विद्यते राज्ञो यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।[४१]

अर्थात् माता, पिता, भ्राता, पत्नी और पुरोहित को न दण्ड देने वाला राजा अपने धर्म का पालन नहीं करता है। कहने का भाव यह है कि अपराध करने पर कोई कितना ही निकट क्यों न हो उसे भी निश्चित रूप से दण्ड दिया जाना चाहिए। राज्य के सात अंगों में एक अंग मित्र भी है। इसके लिए सुहृद शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। राज्य संस्था के लिए मित्रों का होना आवश्यक माना जाता है। दुःख या संकट के साथ-साथ आनन्द के समय भी मित्रों का होना सुखप्रद होता है। इसलिए मित्र राजाओं का होना भी राजधर्म में आवश्यक माना गया है। नरवाहनदत्त जब विश्वविजय यात्रा पर निकले थे तब अनेक मित्र राजागण् उनके साथ थे। उनके साथ चण्डसिंह, वीरपिंगलगान्धार, बलवान वायुपथ, विद्युत्पुंजअमितगति, कालकूट पर्वत के स्वामी, मन्दर, महादंष्ट्र, उनके मित्र अमृतप्रभ, सागरदत्त सहित वीर चित्रांगद आदि अनेक लोग नरवाहनदत्त का अनुगमन कर रहे थे।[४२] नरवाहनदत्त के राज्याभिषेक के समय भी अनेक मित्र राजा उपस्थित थे। मित्रता एक विश्वास का धर्म है। 'कथासरित्सागर' में मित्रता के सम्बन्ध में कहा गया है-

अद्यापि न सखे दृष्टं गृहं भार्या च मे त्वया।

तदेहि तत्र गच्छावो विश्रमायैकमप्यहः।।

भुज्यते यत्र नान्योन्यं गृहमेत्य निरर्गलम्।

प्रदृश्यन्ते न दाराश्च कैतवं तन्न सौहृदम्।।

अर्थात् हे मित्र अभी तक तुमने मेरा घर और मेरी पत्नी को नहीं देखा सो चलो एक ही दिन के विश्राम के लिए सही, जहाँ घर जाकर परस्पर प्रेम पूर्वक भोजन नहीं किया जाता और अपनी-अपनी स्त्रियाँ नहीं दिखाई जाती है वहाँ मित्रता नहीं कपट मात्र है। इस प्रकार यहाँ तक राजा, मन्त्री, दुर्ग, राष्ट्र, कोष, दण्ड और मित्र यानी राजनीति के सात अंगों पर विचार किया गया। अब राजा की शक्तियाँ क्या है? इस पर विचार किया जायेगा। वस्तुतः शक्ति से अभिप्रायः कार्यक्षमता से है जिनके द्वारा राजा कार्यसिद्धि करता है। इसके विषय में 'कथासरित्सागर' में कहा गया है-

उत्साहप्रभुतामन्त्रशक्तित्रययुतस्ततः।

परदेशजिगीषु स्याद् विचार्य स्वपरान्तरम्।।

अर्थात् उत्साह, प्रभुता और मन्त्र- इन तीनों शक्तियों से युक्त होकर राजा अपने और शत्रु के बलाबल को ठीक प्रकार से समझकर दूसरे देशों को जीतने की इच्छा करनी चाहिए। 'अर्थशास्त्र' में प्रभुता को ही प्रभावशक्ति कहा गया है। यहाँ उत्साह और प्रभावशक्ति में उत्साहशक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है-

उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान्। स्वयं हि राजा शूरो बलवान रोगः कृतास्त्रो दण्डद्वितीयोऽपि शक्तः प्रभावन्तं राजानं जेतुम्, अल्पोऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति। निरुत्साहस्तु प्रभाववान् राजा विक्रमाभिपन्नो नश्यति।।

अर्थात् प्राचीन आचार्यों का मानना है कि उत्साहशक्ति और प्रभावशक्ति में उत्साहशक्ति श्रेष्ठ है, क्योंकि शूर, बलवान, निरोग, शस्त्रास्त्र चलाने में निपुण, केवल अपनी सेना की सहायता पर निर्भर रहने वाला उत्साहशक्ति सम्पन्न राजा, प्रभावशक्तिसम्पन्न राजा को अच्छी तरह से जीत सकता है। उसके तेज से उसकी थोड़ी सेना भी सब प्रकार का कार्य करने को तैयार रहती है। प्रभाव सम्पन्न किन्तु उत्साहहीन राजा पराक्रम के समय अपनी रक्षा नहीं कर पाता है। 'कथासरित्सागर' में भी प्रभाव एवं उत्साहशक्ति के सम्बन्ध में कहा गया है- राजा सहायवाञ्शूरः सोत्साहो जयति द्विषः। अनेक सहायकों वाला, शुर और उत्साही राजा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। मन्त्रशक्ति को ही राज्य की मूलशक्ति मानते हुए यहां कहा गया है-

मन्त्रसाध्यमिदं मन्त्रो मूलं राज्यस्य चोच्यते।

श्रुत्वैतत्काकराजस्तं सोऽब्रवीच्चिरजीविनम्।।

अर्थात् यह काम मन्त्र से सिद्ध होने वाला है, क्योंकि राज्य का मूल मन्त्र ही है। यह बात काकराज चिरजीवी से कहता है। वस्तुतः यहां पर कौआ और उल्लू की कथा में शक्तियों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। उल्लू के द्वारा कौओं को मारे जाने और अपमानित किये जाने पर काकराज ने अपने मन्त्रियों की सभा बुलाता है। सभा में उड्डीवी, आडीवी, संडीवी, प्रडीवी और चिरजीवी पांच मन्त्री उपस्थित होते हैं। उसी समय सन्धि के क्रम में काकराज चिरजीवी से मन्त्र शक्ति के सम्बन्ध में कहता है। आपसे (काकराज से) उलूकराज बलवान् है। इसलिए बलवान शत्रु से सन्धि करना श्रेयस्कर माना जाता है। सन्धि षड्गुण के अन्तर्गत आती है। षड्गुण हैं- सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय। राजधर्म में इनका विशेष महत्त्व माना जाता है, इसीलिए इन्हें गुण कहा जाता है। 'अर्थशास्त्र' में कहा गया है कि राज की सात प्रकृतियों और बारह राजमंडल ही छह गुण के आधार हैं। कुछ आचार्यों के मत में गुण दो ही है- सन्धि और विग्रह, अन्य इन्हीं के अवान्तर भेद है, लेकिन आचार्य कौटिल्य षाड्गुण्य को ही मानने वाले है। वे कहते हैं-

षाड्गुण्यमेवैतदवस्थाभेदादिति कौटिल्यः। तत्र पणबन्धः सन्धि, अपकारी विग्रहः, उपेक्षणमासनम्, अभ्युच्चयो यानं, परार्पणं संश्रयः, सन्धिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड्गुणाः।[8]

अर्थात् आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि गुण तो छह ही हैं- उनमें दो राजाओं का कुछ शर्तो पर मेल हो जाना सन्धि है, शत्रु का कोई अपकार करना विग्रह, उपेक्षा करना आसन, चढ़ाई करना यान, आत्म समर्पण करना संश्रय और सन्धि-विग्रह दोनों से काम लेना द्वैधीभाव कहलाता है- यही छह गुण हैं। ये छः गुण रसायन की भांति राजसत्ता के लिए उपयोगी हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात इसकी यह है कि इसमें हानि कुछ नहीं है, भविष्य में ये गुण विशेष फलदायी होते हैं। 'कथासरित्सागर' में सन्धि का वर्णन कई स्थलों पर आया हुआ है। यहां समान कन्याहरण विपत्ति वाले राजा वीरभट और राजा वज्रप्रभ के मध्य सन्धि के विषय में कहा गया है-

तथैव चानुमन्यध्वे यद्यस्मत्सन्धिमाशु तत्।

इहाप्यागम्यतां नो चेन्मृत्युना नोऽत्र निष्कृतिः।।[9]

अर्थात् समान विपत्ति के कारण आप मेरे साथ सन्धि करें और यहां पधारे अन्यथा अपने प्राण त्याग द्वारा ही मैं अपना प्रायश्चित करुंगा। यहां एक महत्त्वपूर्ण बात की गयी है, सन्धि की आवश्यकता दोनों पक्षों की होती है। किसी एक पक्ष से सन्धि का प्रयास निष्फल होती है। इसमें दोनों पक्षों की आवश्यकता की पूर्ति होती है। आगे दशम लम्बक में सन्धि-विग्रह के विषय में इस प्रकार कहा गया है-

तेषु सामादि युञ्जानं निराकृत्य स्वमन्त्रिणम्।

राजा विक्रमसिंहोऽसौ युद्धायैषां विनिर्ययौ।।[50]

अर्थात् जब राजा विक्रम सिंह के मन्त्री महाभट वीरबाहु आदि के साथ सन्धि आदि करके उन्हें शान्त करने का यत्न कर रहे थे। तभी राजा विक्रम सिंह मन्त्री के परामर्श का अनादर कर युद्ध के लिए बाहर निकल पड़ा। यानि सन्धि को भंगकर विग्रह का आश्रय ले लिया। शत्रु पर आक्रमण करना ही विग्रह है। सन्धि-विग्रह का पालन करना बहुत कठिन कार्य माना जाता है। इसके सम्बन्ध में यहाँ कहा गया है-

यातिन काले च जरसा विश्लिष्यत् सन्धिविग्रहः

सोऽभूदुदयवुठोऽत्र राजा राज्यभराक्षमः।।[51]

अर्थात् कुछ समय बाद राजा उदयतुंग राज्य का शासन करने में असमर्थ हो गया, क्योंकि बुढ़ापे के कारण सन्धि और विग्रह करने की उनकी शक्ति शिथिल हो गयी थी। इसी प्रकार अनेक युद्ध यात्रा का वर्णन यहां यान तथा अन्य वर्णनों में आसन, द्वैधीभाव और संश्रय का भी वर्णन किया गया है। ये षड्गुण भारतीय राजनीति के बहुत सबल पक्ष हैं। आवश्यकतानुसार इन गुणों का उपयोग कर कोई भी राजा अपने राजवैभव तथा पराक्रम वैभव को उच्च शिखर पर स्थापित करने में सफल हो सकता है।

षड्गुणों की भांति उपाय भी राजधर्म अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इनकी संख्या चार है- साम, दाम, दण्ड और भेद। 'कथासरित्सागर' में इनके और षड्गुणों के कार्य व्यवहार के सम्बन्ध में कहा गया है-

सामदानाद्युपायज्ञो योगक्षेमं प्रसाधयेत्।

प्रयुञ्जीत ततः सन्धिविग्रहादीन् गुणांश्च षट्।।[52]

अर्थात् साम, दान आदि उपायों से योग और क्षेम की साधना करनी चाहिए और सन्धि-विग्रह आदि छह गुणों का प्रयोग करना चाहिए। कहने का भाव यह है कि साधना अचूक होती है और प्रयोग अनिश्चित। साम दान आदि उपायों से अप्राप्त को प्राप्त करना तथा प्राप्त की रक्षा करना ही योग-क्षेम है। कहीं-कहीं दाम के जगह दान का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ मृगांकदत्त के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक ब्राह्मण श्रुतधिरव मृगांकदत्त से कहा-

कार्याकार्यविभागः प्राग्बोद्धव्यो विजिगीषुणा।

असाध्यं यदुपायेन तदकार्यं परित्यजेत।।

तत्कार्य यदुपायेन साध्यं तत्र चतुर्विधः।

उपायः सामं दानं च भेदो दण्ड इति स्मृतः।।

पूर्वः पूर्वो वरस्तेषां निकृष्टश्च परः परः।

तस्मात्सामप्रयोगस्ते पूर्व देवेह युज्यते।।

निर्लोभे कर्मसेने हि राज्ञि दानं न सिद्धये।

न भेदो नहि सन्त्यस्य क्रुद्धलुब्धावमानिता।।

दण्डश्च दुर्गदेशस्थे तस्मिन्नतिबलाधिके।

नृपैरजितपूर्वेऽन्यैः प्रयुक्तः संशयावहः।।[53]

अर्थात् विषय की इच्छा रखने वाले को पहले करने योग्य और न करने योग्य कामों का अन्तर जान लेना चाहिए, जो काम उपाय से सिद्ध न हो सके, उसे न करने योग्य जानकर छोड़ देना चाहिए। जो काम उपाय से सिद्ध हो सके वही करना चाहिए। ये उपाय चार है– साम, दान, भेद और दण्ड। इनमें भी बाद वाले से पहला उपाय श्रेष्ठ होता है। पहले वाले के बाद का उपाय अश्रेष्ठ है। इसलिए हे देव यहाँ साम का प्रयोग करना ही आपके लिए अच्छा है। राजा कर्मसेन निर्लोभी है, अतः दान देकर आप अपने कार्य में सफलता नहीं पा सकते हैं। आप उनमें भेद (फूट) भी नहीं डाल सकते, क्योंकि उसकी प्रजा न तो उससे क्रुद्ध है, न लोभी है और न राजा के द्वारा उसकी अवमानना ही हुई है। वह दुर्ग में रहता है। उसके पास अधिक सेना है। इससे पहले उसे कोई पराजित भी नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में दण्ड का प्रयोग करके भी सफलता पाने में सन्देह है। यहाँ लेखक के द्वारा राजा कर्मसेन के ऊपर उपायों में केवल साम को ही उपयुक्त माना गया है। इसलिए साम के सम्बन्ध में यहां कहा गया है– **तदेतमर्थ सान्त्वेन ब्रूमस्तस्याधुना वरम्।**[54] अर्थात् यह अच्छा है कि अभी यह बात उसे साम यानि मैत्रीपूर्ण मार्ग से कहूँ। यहाँ पर राजा उदयन के आत्माभिमानी होने के कारण साम, दाम आदि का प्रभाव उस पर न पड़ने की बात कही गयी है–

मानोद्धतो वीतलाभो रक्तभृत्यो महाबलः।

असाध्योऽपि स सामादेः साम्ना तावन्निरुप्यताम्।।[55]

अर्थात् राजा उदयन उग्र आत्माभिमानी, निर्लोभ, अनुरक्त, अनुचरों वाला और महाबलवान (सेना) है। वह साम, दाम, भेद, दण्ड आदि नीतियों के वश में नहीं आने वाला है। उसे शान्ति से ही वश में लाया जा सकता है। यानि ऐसे लोगों पर समादि के उपाय कारगर नहीं हो सकते हैं। ऐसे लोगों को शान्त करने का मात्र शान्ति मार्ग ही है। मनुस्मृति में भी इसके सम्बन्ध में कहा गया है–

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथा वा पृथक्।

विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन।।[५६]

अर्थात् राजा साम (प्रेम प्रदर्शन) दान, भेद (शत्रु के राज्यार्थी दायद या मन्त्री आदि को विजय होने पर राज्य आदि का लोभ देकर अपने पक्ष में करना)। इन तीनों उपायों से अथवा इनमें से किसी एक या दो उपायों से शत्रु को जीतने का प्रयत्न करे। पहले युद्ध (दण्ड) से जीतने की कदापि चेष्टा न करे। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि युद्ध में जय-पराजय निश्चित नहीं होती है। इसलिए युद्ध से राजाओं को बचना चाहिए। 'कथासरित्सागर' में भी कहा गया है-

वत्स यद्यपि शूरस्त्वं सैन्यमस्ति च ते बहु।

तथापि नैव विश्वासो जयश्रीश्चपला रणे।।[५७]

अर्थात् बेटा यद्यपि तुम शूरवीर हो और तुम्हारे पास सेना भी बहुत है तो भी विजय पर विश्वास नहीं, क्योंकि युद्ध में विजयलक्ष्मी अस्थिर रहती है। 'कथासरित्सागर' में हय, गज, रथ के साथ पैदल सेना का भी वर्णन किया गया है। सेना का नेतृत्व सेनापति के द्वारा किया जाता था।[५८] यहाँ युद्ध नीति में कपट युद्ध का वर्णन किया गया है।[५९] धनुष-बाण, खड्ग, कटार, भाला, ढाल इत्यादि उस समय के अस्त्र-शस्त्र थे। एक बात और यहां देखने को मिलती है कि शत्रु-विनाश के लिए सुन्दर स्त्रियों का भी प्रयोग किया जाता था।[६०] 'कथासरित्सागर' में बाहु युद्ध का भी वर्णन मिलता है। यहां वीरकेतु नामक राजा और एक चोर के मध्य बाहु युद्ध का वर्णन हुआ है।[६१] यहाँ पर अनेक राजाओं के द्वारा सीमा विस्तार के रूप में युद्ध का वर्णन किया गया है न कि सामाजिक या धार्मिक विद्वेष के कारण।

'कथासरित्सागर' में दूत और गुप्तचर व्यवस्था पर भी बल दिया गया है। अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक या सांग्रामिक कार्य के लिए दूत भेजने की प्रथा यहाँ दृष्टिगोचर होती है।[६२] एक राज्य दूसरे राज्य की गतिविधि के साथ राज्य के आंतरिक विषयों के मत इत्यादि जानने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करते थे।[६३] इसके साथ-साथ पहरेदार[६४], नगररक्षक[६५], नगराध्यक्ष[६६], नगरपाल[६७], प्रतिहारा[६८], दूती[६९], वन्दी-चारणगण[७०] आदि भी राजकर्मचारी के रूप में दिखाई देते है। ये सभी सेवक वर्ग में होते थे। इनका प्रमुख कार्य राज्य की आन्तरिक व्यवस्थाओं को सुचारुरूप से संचालित करना होता था।

एक बात और यहाँ देखने को मिलती है, राजा लोग अपनी सीमा विस्तार व सीमा की सुरक्षा के लिए अनेक राजाओं की कन्याओं से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित करते थे। उदयन के दो विवाह का वर्णन वासवदत्ता और पद्मावती के साथ मिलता है। वह भी सीमा विस्तार के उद्देश्य से ही हुआ था। उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त का चक्रवर्ती सम्राट के रूप में वर्णन किया गया है। उनके भी पच्चीस विवाह हुये थे-

नरवाहनदत्तोऽसौ तैस्तैविद्याधराधिपैः।

अन्वासितः स्वाभार्याभिः पञ्चविंशतिभिर्वृतः।।[७१]

विद्याधर राजाओं के एकमात्र चक्रवर्ती सम्राट के पद पर आसीन नरवाहनदत्त मन्त्रियों तथा अपनी पच्चीस पत्नियों सहित निवास करने लगे। एक स्थल पर इनकी पत्नियों के नाम भी आये हुए हैं- मदनमंचुका, रत्नप्रभा, अलंकारवती, ललितलोचना, कर्पूरिका, शक्तियशा, वेगवती, असिनावती, गन्धर्वदत्ता, प्रभावती, आत्मिका, वायुवेगयशा, कालिका, विद्युत्पुंजा, मतंगिनी, पद्मप्रभा, मन्दरदेवी, कनकवती, कालवती, श्रुता, अम्बरप्रभा और अन्य पांच।[७२]

'कथासरित्सागर' में एक और महत्त्वपूर्ण बात प्रजातान्त्रिक राज्य व्यवस्था के रूप में मिलती है। वहाँ प्रजातांत्रिक राज्य के सम्बन्ध में नरवाहनदत्त से काश्यपमुनि कहते हैं कि शिविवंश में चन्द्रावलोक नाम का एक राजा हुआ था, इसकी चन्द्रलेखा नामक पटरानी थी। उस चन्द्रावलोक के पास कुवलयापीड नामक एक विशाल हाथी था। जो शत्रु मर्दन के लिए जगत् विख्यात था। उसी हाथी के प्रभाव से चन्द्रावलोक प्रजातान्त्रिक राज्य की स्थापना हुयी थी। वहां कहा गया है-

तत्प्रभावेण भूपालो वलिनापि न शत्रुणा।

स पौरस्वामिके राज्ये पर्यभूयत केनचित्।।[७३]

अर्थात् उस हाथी के प्रभाव से प्रजातांत्रिक राज्य में कोई बलवान शत्रु भी उस राजा चन्द्रावलोक को न दबा सका। यहाँ 'पौरस्वामिके' शब्द से अभिप्राय जनता जिसकी स्वामी हो ऐसा राज्य। वेदों इत्यादि में भी इस प्रकार का वर्णन आया है। आवश्यकता आविष्कार की जननी कही जाती है। जिस युग में जैसी राजसत्ता की आवश्यकता होती है वैसी राजसत्ता का जन्म होता है। इसी अर्थ में आज के लोकतंत्र को ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कथासरित्सागर' में राजा, मन्त्री, राज्य, दुर्ग, कोष, दण्ड, नायक, सेनापति व अन्य राज्य कर्मचारी युद्धनीति के साथ गुप्तचर एवं दूत व्यवस्था के द्वारा एक वृहद् राजधर्म को स्थापित करने वाला कथा कोश है, जिसके आन-बान में राज्य सीमा विस्तार और पौरुष पराक्रम का भाव निहित है। राजधर्म के मूल में प्रजापालन का भाव ही निहित है। प्रजापालन ही श्रेष्ठ राजधर्म की परिकल्पना है, जो इन्द्रिय विजय राजाओं में ही विराजती है।

सन्दर्भः

१. कथासरित्सागर, ६/७/२१३

२. वही, ६/८/१९१-१९२
३. वही, ६/८/१०७-११८
४. वही, २/२/१९०
५. अर्थशास्त्र, ३/६/११
६. वही, १६/१/६४-६५
७. वही, १२/२२/७०
८. वही, १२/२७/४१-४३
९. मनुस्मृति, ७/४५-४८
१०. कथासरित्सागर, ९/२१/३७३-३७४
११. उत्तररामचरितम् , १/११
१२. वही, १२/९/२७
१३. अर्थशास्त्र, १४/१८/२-३
१४. कथासरित्सागर, ३/१/५६
१५. वही, ६/८/१९३
१६. वही, ३/१/५७-५९
१७. वही, १२/२२/६९
१८. वही, १२/२२/७१-७२
१९. वही, १२/३४/४८-४९
२०. वही, १२/३६/७३, १२/३/१८
२१. अर्थशास्त्र, १०/१४/२-४
२२. द्विवेदी कपिल देव, वेदों में राजनीति, पृ.५५

२३. कथासरित्सागर, १/३/७९

२४. वही, २/१/५

२५. वही, १२/२/७७

२६. वही, २/३/३१-३३

२७. वही, ३/५/५४

२८. वही, २/१/४

२९. वही, ३/४/२६१

३०. वही, ३/५/९६

३१. वही, ३/५/१०९

३२. वही, ३/५/११३

३३. वही, ८/१/१७

३४. वही, ८/१/४६

३५. वही, ८/१/४७

३६. वही, १२/५/२०९

३७. वही, १२/७/३८

३८. वही, ४/१/९९

३९. वही, ६/८/१९६

४०. वही, १०/६/१९६

४१. महाभारत, शान्तिपर्व, ६५/८

४२. कथासरित्सागर, १०/६/१३

४३. वही, १०/७/१११-११२

४४. वही, ६/८/१९८

४५. अर्थशास्त्र, १३५-१३६/१/२

४६. कथासरित्सागर, १०/६/१३

४७. वही, १०/६/१६

४८. अर्थशास्त्र, ९८-९९/१/४-५

४९. कथासरित्सागर, ८/१/८५

५०. वही, १०/२/६

५१. वही, १२/५/८९

५२. वही, ६/८/२००

५३. वही, १२/३५/१२१-१२५

५४. वही, १७/६/६

५५. वही, २/३/१६

५६. मनुस्मृति, ७/१९८

५७. कथासरित्सागर, ९/२/३७५

५८. वही, १२/३६/८५

५९. वही, ३/१/१०१

६०. वही, १४/४/१९४

६१. वही, १२/२/३१

६२. वही, ८/१/८२-८३, ८६, १२/३५/१११, १२९-१३०

६३. वही, ३/१५८, ३/५/६१, १२/१९/५६-५७, १२/३६/७९, १२/३६/१२०

६४. वही, ३/३/१६०

६५. वही, १२/३६/७५, ७७

६६. वही, १२/३६/७८

६७. वही, १२/३६/८६-८७

६८. वही, १७/६/१४

६९. वही, १७/६/११४-११५

७०. वही, १२/३६/१६६

७१. वही, १७/१/५

७२. वही, १५/२/११४-११८

७३. वही, १६/३/२०

❐